Dr. M. Sharma
Journal – Article

Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222 ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

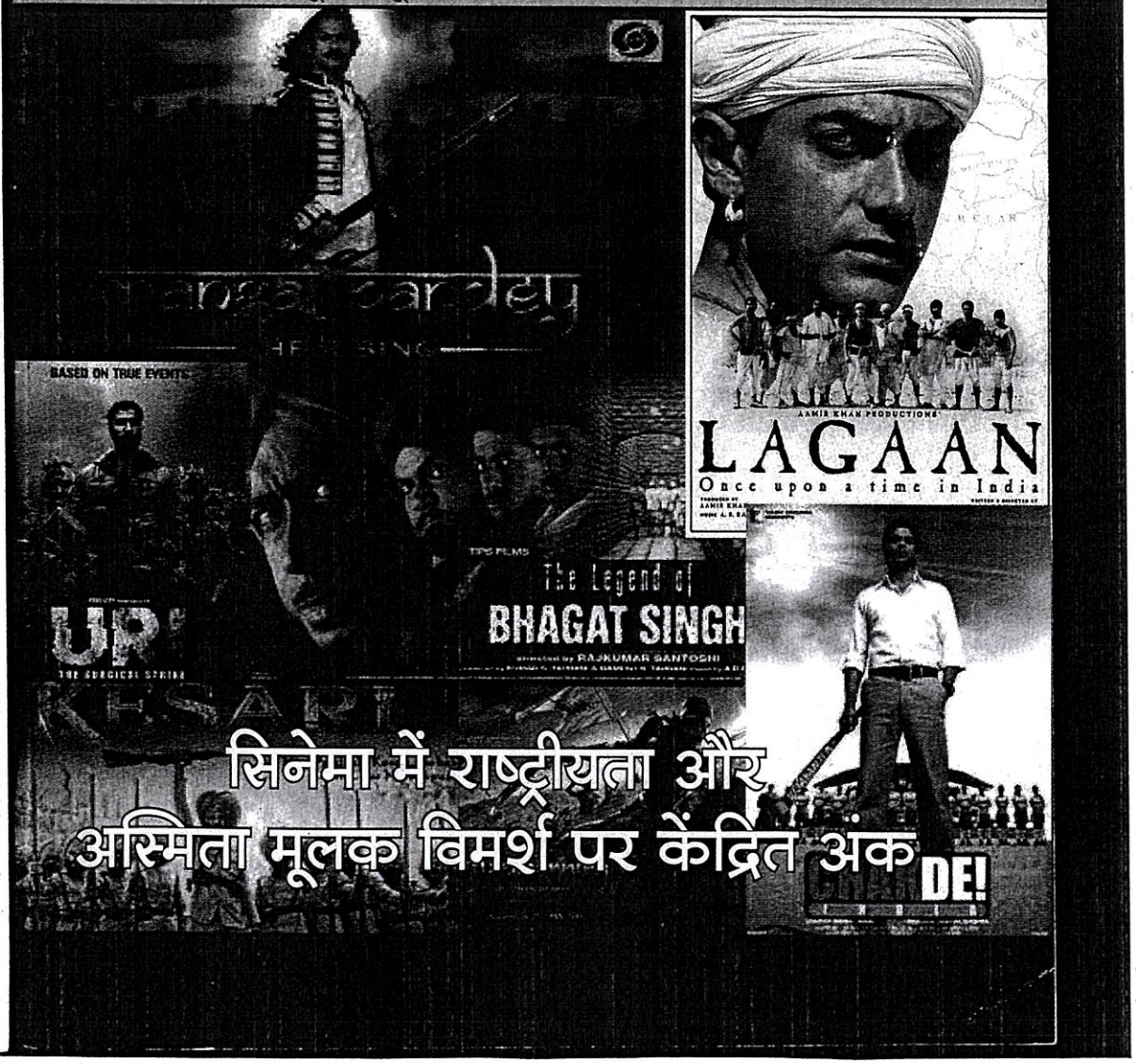

सिनेमा में राष्ट्रीयता और अस्मिता मूलक विमर्श पर केंद्रित अंक

Certified as
TRUE COPY

Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

देवेश ठाकुर

रचना-यात्रा के सात दशक

जन्म : 23 जुलाई, 1933, नानी के गाँव पैठानी (अल्मोड़ा, उत्तरांचल) में

रचना संसार

उपन्यास : भ्रमभंग, प्रिय शबनम, काँचघर, इसीलिए, अपनाअपना अकाश, जनगाथा, गुरुकुल, शून्य से शि
अंततः, शिखर पुरुष, जंगल के जुगनू, कातर बेला, जीवा, देवता के गुनाह, संध्यां छाया, स्व
व्यक्तिगत, मारिया, कैम्पस कथा, स्मृतियों के कोलाज,

शीघ्र प्रकाश्य : तीसरी लड़ाई, ऐसा भी होता है, अपने अपने अंतर्द्वंद्व

काव्य : मयूरिका, अंतरछ्या, अवकाश के क्षणों में, कविताएँ (संपूर्ण कविताएँ)

कहानी : सिर्फ संवाद, फैसला तथा अन्य कहानियाँ

समीक्षा : नयी कविता के सात अध्याय, नदी के द्वीप की रचना प्रक्रिया, मैला आँचल की रचना प्रक्रिया,
हिन्दी कहनी का विकास, साहित्य की सामाजिक भूमिका, साहित्य के मूल्य, आलेख

शोध : प्रसाद के नारीचरित्र (पीएच. डी.), आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ, हिन्द
साहित्य तथा साहित्येतिहास : अंतरानुशासनों का अनुशीलन (विश्वविद्यालय अनुदान अयोग
की विशिष्ट परियोजना के अंतर्गत)

संपादन : कथाक्रम1, कथाक्रम2 (कुल 175 कहानियाँ), कथावर्ष1976, कथावर्षझ1977,
कथावर्ष1978, कथावर्ष1979, कथावर्ष1980, कथावर्ष1981, कथावर्ष1982, कथावर्ष
1983, कथावर्ष1992, कथावर्ष1994, हिन्दी की पहली कहानी, रचना प्रक्रिया और रचन
प्रेमचंद साहित्य के अध्येता : डॉ. कमल किशोर गोयनका किशोर साहित्यः दो सहेलियाँ (क
संग्रह), ममता (उपन्यास)

समाज और राजनीति : आजादी की आधी सदी और आम आदमी (तीन खंडों में)

जीवनी : बुद्धगाथा

आत्मकथा : मैं यों जिया (आरंभिक अंर्तयात्रा, चंदन वन के बीच, इस यात्रा में) (तीन खंडों में) इसके
लोकप्रिय अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद। 1500 से अधिक लेखों, शोधपत्रों, कहानियों, कवि
पुस्तक समीक्षाओं और स्तम्भ लेखों का प्रकाशन।

Certified as
TRUE COPY

Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

डॉ. मिथिलेश शर्मा जी
को
लेखकीय प्रति
सतीश पांडेय

ISSN-2250-2335 Reg. No. MAHHIN/2008/26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की त्रैमासिक-अव्यावसायिक पत्रिका)
पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रबंध संपादिका :
डॉ. रोहिणी शिवबालन
प्रधान संपादक-प्रकाशक :
डॉ. देवेश ठाकुर
संपादक :
डॉ. सतीश पांडेय
संयुक्त संपादक :
डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट
डिजिटल संपादक :
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

संपादकीय-संपर्क :
बी-23, हिमालय सोसाइटी,
असल्फा,
घाटकोपर (प.), मुंबई-400 084.

Email: sameecheen@gmail.com
website-www.http//:
sameecheen.com

विशेष :
'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

परीक्षक विद्वत मंडल : (Peer Review Team)
1) डॉ. राम प्रसाद भट्ट
भारत-विद्या विभाग,
हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, हैम्बर्ग, जर्मनी
2) प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3) प्रो. (डॉ.) वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विवि.,
वाराणसी, (उ. प्र.)
4) डॉ. नरेन्द्र मिश्र
प्रो. हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू मैदानगढ़ी,
दिल्ली110068
5) प्रो. (डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय,
मुंबई
6) प्रो. (डॉ.)अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई
विश्वविद्यालय, मुंबई
7) प्रो. (डॉ.) सदानंद भोसले
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सवित्रीबाई फुले पुणे
विद्यापीठ, पुणे
8) प्रो. (डॉ.) शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कर्नाटक
विश्वविद्यालय, धारवाड़
9) डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.) मुंबई-400 086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

• वर्ष-16 • अंक 34 • जनवरी-मार्च-2023 • पूर्णांक 71 • मूल्य 100 रुपए
सहयोग : एक प्रति रु. 100/-, वार्षिक रु. 400/-, पंच वार्षिक रु. 2000/-

सीधे समीचीन के खाते में भेजने के लिए : खातेधारक का नाम : समीचीन / sameecheen
A/C No. 60330431138, Bank of Maharashtra,
Dr. Ambedkar Road, Dadar, Mumbai. IFSC : MAHB0000045

अनुक्रमणिका

1. अपने तई 08
2. इक्कीसवीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना
प्रा. एस. के. आतार 09-12
3. 21वीं सदी के राष्ट्रीय भावना के हिंदी फिल्मी
गीत और आम आदमी - डॉ. सूरज बालासो चौगुले 13-18
4. '२१वीं सदी के हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना'
डॉ. सविता लालासो नाईक-निंबाळकर 19-21
5. कितने पाकिस्तान उपन्यास में राष्ट्रीयता-डॉ. शहनाज महेमूदशा सय्यद 22-26
6. हिंदी दलित काव्य में राष्ट्रीय भावना-प्रा. मारुती दत्तात्रय नायकू 27-34
7. हिंदी सिनेमा और राष्ट्रीय भावना-प्रा. डॉ. प्रकाश आठवले 35-39
8. भूमंडलीकरण के चपेट में राष्ट्रीयता का चिराग : पॉल गोमरा
डॉ. विकास विलासराव पाटील 40-42
9. भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणाः'लगान' के जातीय समीकरण
प्रा. डॉ. दीपक जाधव 43-48
10. 'पं. प्रदीप के गीतों में राष्ट्रीय चेतना : पुष्पा भारती के संस्मरण के
संदर्भ में' शोध निर्देशक - डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास
शोध छात्रा - रूपाली विठ्ठल माने 49-55
11. महावीर उत्तरांचली की 'प्रतिनिधि रचनाएं' संग्रह में चित्रित
राष्ट्रीय चेतना - डॉ. हेमलता काटे 56-61
12. '21 वी सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना'- प्रा. डॉ. राठोड बाळु भोपू 62-68
13. 21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावनाः 'टॉयलेट एक प्रेम कथा'
के परिप्रेक्ष्य में' - प्रा. सागर रघुनाथ कांबळे 69-72
14. नवजागरण की परम्परा और पुनरुत्थान का द्वन्द्व
(डॉ. विकास गडकरी, डॉ. विनय तिवारी, डॉ. संतोष कोळेकर
के संदर्भ में) - प्रा. सौ. शिल्पा शिंदे 73-76
15. हिंदी फिल्मों में सामाजिक प्रश्नों द्वारा व्यक्त राष्ट्रीय भावना
डॉ. सौ. वृषाली विकास मिणचेकर 77-83
16. राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत डॉ. कुमार विश्वास का काव्य-डॉ. नितीन धवडे 84-87
17. 21वीं सदी के भीम गीतों में राष्ट्रीय भावना
कु. शितल प्रल्हाद चव्हाण, शोधछात्र 88-91
18. डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना
डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर 92-97
19. '21वीं सदी के हिंदी उपन्यास और राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व'
डॉ. नितीन विठ्ठल पाटील 98-101
20. झारखण्ड की हस्तशिल्प-कलाओं में राष्ट्रीय भावना
प्रमिला टोप्पो, शोधार्थी 102-108
21. '21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावनाः 'न्यूटन' के परिप्रेक्ष्य में'
डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील 109-112
22. '२१वी सदी के हिन्दी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना'
(संदर्भ -चक दे इंडिया और गदर : एक प्रेमकथा)-प्रा. अजित दादू फाळके 113-115
23. हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना- निलेश सखाराम डामसे 116-119
24. 21वीं सदी की हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना-डॉ. अशोक मरळे 120-122
25. २१ वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना-डा. संतोष रायबोले 123-127
26. जयभारत नाटक में राष्ट्रीय भावना-प्रा. जेलित कांबळे 128-131
27. 'लौटे हुए मुसाफिर' में प्रतिपादित राष्ट्रीय भावना
गीतु दास (शोध छात्र), डॉ. जी. शान्ति (शोध निर्देशिका) 132-136
28. डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य में राष्ट्रीय चेतना-प्रा. आनंद र. बक्षी 137-139
29. 21वीं सदी के हिंदी बाल साहित्य की कविता में राष्ट्रीय चेतना
डॉ. पंडित बन्ने, डी. लिट् 140-144
30. अज्ञेय के काव्य साहित्य में चित्रित राष्ट्रीय जीवन
प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे 145-151
31. इक्कीसवीं सदी के भारतीय सिनेमा में राष्ट्रीय चेतना
प्रा. बहिरम देवेंद्र मगनभाई 152-154
32. 21वीं सदी के हिन्दी साहित्य में नारी चेतना-प्रा. डॉ. भारत बा. उपाध्य 155-157
33. 'हम एक हैं' नाटक में प्रतिबिंबित राष्ट्रीय एकता
प्रा. भिमाशंकर लक्ष्मण गायकवाड 158-161
34. 21 वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना-डॉ. जे. ए. पाटील 162-165
35. '21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रीय भावना'-प्रा. एस. ए. वनिरे 166-169
36. 21वीं सदी में हिंदी सिनेमा और राष्ट्रीय भावना-डॉ. सौदागर साळूंखे 170-172
37. 21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना-डॉ. प्रकाश विठ्ठल शेटे 173-175
38. हिंदी साहित्य और सिनेमा-गौरी त्यागी, शोधार्थी 176-180
39. 21वीं सदी की हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावनाः उत्तरआधुनिकता
बोध के परिप्रेक्ष्य में - डॉ. आर. पी. भोसले 181-185
40. सुरेश शुक्ल 'चंद्र' के 'वतन के तीन सिपाही' नाटक में राष्ट्रीय भावना
लेफ़्टिनेंट डॉ. रविंद्र पाटील 186-189
41. 'कृष्णा सोबती के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना'-प्रा. व्ही. एच. वाघमारे 190-191
42. मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना
प्रा. अशोक गोविंदराव उघडे 192-198
43. 21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रीय भावना-डॉ. मारोती यमुलवाड 199-202
44. 'घुटन भरी जिंदगी' में राष्ट्रीय भावना-डॉ. गोरख निळोबा बनसोडे 203-208
45. नरेंद्र नागदेव के कहानी साहित्य में राष्ट्रीय भावना
('उन्नीस सौ चवालीस' एवं 'छलांग' कहानी के विशेष संदर्भ में)
नीलेश वसंतराव जाधव (अनुसंधाता) 209-213
46. दलित साहित्य की अवधारणा और चिंतन
अखिलेश जैसल (शोधार्थी), डॉ. व्ही. डी. सूर्यवंशी (शोध निर्देशक) 214-215
47. गुजराती साहित्य में नारी चेतना-डॉ. हेतल पी. बारोट 216-218
48. 'दोहरा अभिशाप' में व्यक्त क्रांति चेतना-प्रो. अंजना विजन 219-222
49. मुंबई से सटी येऊर पहाड़ी पर बसी वारली और ठाकुर जनजातियाँ
(आदिवासी जीवन पर केंद्रित आलेख) - डॉ. जयश्री सिंह 223-225

Certified as TRUE COPY

Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

50. झारखंड की जनजातीय कलाओं में सोहराई और कोहबर चित्रकारी : गुफा से शहर की दीवारों तक की यात्रा - डॉ. इंद्राणी रॉय 226-229
51. आदिवासी जीवन की प्रमाणिक अभिव्यक्ति : नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द - डॉ. मिथिलेश शर्मा 230-234
52. 21वीं सदी में आदिवासी एवं दलित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (2001 से 2010) - ज्योति अजय सिंह 235-240
53. इक्कीसवीं सदी के आदिवासी साहित्य में विमर्श और चुनौतियाँ डॉ. नवनाथ गाड़ेकर 241-245
54. चयन प्रतिमान के निकष पर ज्ञानेंद्रपति कृत 'एकचक्रानगरी' काव्य नाटक प्रो सदानंद भोसले (शोध निर्देशक/ रेवनसिद्ध काशिनाथ चव्हाण (शोध छात्र) 246-253
55. आसमां में सुराख की एक कोशिश करता उपन्यास : उत्कोच श्यामसुंदर पाण्डेय 254-259
56. अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में 'मेरी रूस-यात्रा' का मूल्यांकन प्रो. डॉ. बाळासाहेब सोनवणे 260-264
57. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में दलित विमर्श' ('बस्स! बहुत हो चुका कविता के विशेष संदर्भ में) डॉ. ईश्वर पवार 265-267
58. शिवमूर्ति के तर्पण उपन्यास में दलित चेतना-डॉ. गीता संतोष यादव 268-274
59. समकालीन हिन्दी कहानी में आदिवासी स्त्री गुप्ता अशोक कुमार कृपानाथ 275-280
60. आदिवासी जीवन की संघर्ष गाथा 'जंगल जहां से शुरू होता है' डॉ. चंपा शिवदत्त मासीवाल 281-285
61. हिंदी साहित्य : दलित नारी की स्थिति-डॉ. उर्मिला सिंह 286-290
62. 21वीं सदी में हिन्दी आदिवासी कविता : दशा, दिशा एवं सम्भावनाएँ निलेश शिवाजी देशमुख, शोधार्थी 291-296
63. पूर्वोत्तर भारत का आदिवासी : लोकजीवन और संस्कृति डॉ. पंडित बन्ने, डी.लिट् 297-300
64. समकालीन व्यंग्य साहित्य -डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट 301-305
65. हिमांशु जोशी के उपन्यासों में व्यक्त समकालीन राजनीति डॉ. ममता पंत 306-311
66. 'परशुराम शुक्ल के बाल काव्य में राष्ट्रीय भावना' डॉ. वर्षाराणी निवृतीराव सहदेव, शोध श्रीमती सुरेखा संदीप जाधव, निर्देशक 312-317
67. २१ वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना डॉ. गोरखनाथ किर्दत 318-322
68. 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में चित्रित राष्ट्रीय भावना प्रो. डॉ. सविता शिवलिंग मेनकुदळे 323-328
69. राजी सेठ कृत 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना - डॉ. संदीप जोतिराम किर्दत 329-335
70. 'आना इस देश' उपन्यास में देशप्रेम की भावना डॉ. दिलीपकुमार कसबे 336-340

Certified as TRUE COPY
Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

71. प्रदीप सौरभ रचित 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में राष्ट्रीय भावना के राजनीतिकरण का चित्रण - डॉ. सचिन मदन जाधव 341-344
72. गायब होते पहाड़ की करुण गाथा 'पहाड़ चोर' - डॉ मधुकर लक्ष्मण डोंगरे 345-348
73. 21 वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना - डॉ. युवराज माने 349-354
74. 'बाल सतसई' में राष्ट्रीय भावना -डॉ. लिपारे अजित विठ्ठल 355-358
75. 21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना प्रा. कोळी सोमनाथ तातोबा 359-361
76. 21 वीं सदीः किन्नर समुदाय के सिनेमा में राष्ट्रीय भावना डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास 362-365
77. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श एवं विस्थापन - ममता शत्रुघ्न माली - शोधार्थी 366-371

मारता है तो नायिका भी पलट कर उसके गाल पर थप्पड़ जड़ देती है। यहीं से शुरू होता है प्रेम और नंगे यथार्थ में संघर्ष जिसकी परिणीति होती है वंदना के खुदकुशी से। कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। कहानी कई मोड़ लेती है। नायक की फिर उसके ही बिरादरी की संगीता से शादी होती है। लेकिन मास्टर जी (नायक) की जिंदगी में एक और औरत है-आएशा, जो कि हाईप्रोफ़ाइल वेश्या है। मास्टर जी की दूसरी पत्नी से भी नहीं निभती है और पत्नी पति अलग रहने लगते हैं। कहानी का अंत सुखद है संगीता और मास्टर जी की एक बेटी पैदा होती है और फिर दोनों पति पत्नी साथ में रहने लगते हैं। सामंतवादी, अर्थव्यवस्था, समानतावादी, पूंजीवादी व्यवस्था में फंसे दलित, दलितों की त्रासदी को प्रमाणिकता के साथ उजागर करते हैं। दलितों का शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास इक्कीसवीं सदी में लिखे गए- मोहनदास नैमिशराय 'आज बाजार बंद है'(२००४) ,जख्म हमारे (२०११), रूपनारायण सोनकर 'डंक' (२००९), 'सूअरदान' (२०१०), 'गटर का आदमी' (२०१५), शरण कुमार लिंबाले 'नरवानर' (२००४), 'हिन्दू' (२००४), 'बहुजन'(२००४), शुशीला टाकभौरे 'नीला आकाश(२०१३) आदि उपन्यास हैं।

एक तरफ आदिवासी उपन्यास पर विचार करते हैं और दूसरी तरफ दलित उपन्यास पर विचार करते हैं तो हमें विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी के आदिवासी उपन्यास और दलित उपन्यास आकर्षित करते हैं। इसकी खास वजह यह है कि यह उपन्यास केवल आदिवासियों और दलितों के सांस्कृतिक प्राकृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते। वरन ये वैश्वीकरण, बाजारीकरण की युग में आदिवासियों और दलितों के सामने आ रही नवीनीकरण की समस्याओं को सामने रखते हैं। वैश्वीकरण, बाजारवाद, शिक्षा, बाल विवाह, बेरोजगारी, अंधविश्वास, विस्थापन, वेश्यावृत्ति, प्रेम विवाह आदि जैसी समस्याओं को आदिवासी उपन्यास और दलित उपन्यास ने उजागर किया है और उनसे कैसे निपटा जा सकता है उनका भी सुझाव देते हैं।

संदर्भ :

1. रेत- भगवानदास मोरवाल, नई दिल्ली, पृष्ठ २०८
2. वही, पृष्ठ ११,
3. वही, पृष्ठ १९३
4. ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र- डॉ. ओम प्रकाश जोशी, नई दिल्ली, पृष्ठ ७
5. ग्लोबल गाँव के देवता- रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ ११
6. वीरांगना झलकारी बाई-मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ २४
7. वही, पृष्ठ ३६,
8. वही, पृष्ठ ४१,
9. वही, पृष्ठ ४२

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
सिद्धार्थ कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
मुंबई-४०००९१

Certified as TRUE COPY

Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

आदिवासी जीवन की प्रमाणिक अभिव्यक्तिः नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द

डॉ. मिथिलेश शर्मा

आधुनिक भारतीय आदिवासी समाज में एक जागरूक महिला के रूप में तमाम समस्याओं को अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर करती हुई झारखंड के संथाल परगना की निर्मला पुतुल सामने आती हैं। निर्मला पुतुल आदिवासियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों व निर्मम परम्पराओं द्वारा हो रहे शोषण के खिलाफ अपनी आवाज उठाती हैं। वे एक ऐसी शब्द चित्रकार हैं कि उनकी कविता में शब्द बोलते हैं। आदिवासी समाज के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा हेतु वे सदैव अपनी कविता को वाणी प्रदान करती हैं। निर्मला पुतुल के प्रतिरोधी स्वरों के बारे में डॉ. विजयलक्ष्मी सालोदिया कहती हैं - 'निर्मला पुतुल अपने सामाजिक सरोकारों का पूर्ण निष्ठा से निर्वाह करते हुए भारतीय संस्कृति का पदार्फाश करती हैं। उनकी भाषा का झारखंडीपन, नाचने के लिए खिलखिलाहट, रोने के लिए पहाड़ों की शांति, अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष की शक्ति उनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। अपनी कविताओं में, सरकारी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचारों का भांडा वह फोड़ती हैं। इंदिरा आवास का हवाला देते हुए वह फर्जी झूठा मस्टर रोल भरने वालों, कम तोलने और कम नापनेवालों के खिलाफ अपना रोष प्रकट करती हैं। वैश्वीकरण के नाम पर हो रही धोखाधड़ी का भी वह रेशा-रेशा उधेड़ती हैं। महिला आयोग से भी उन्हें शिकायत है। इतना ही नहीं, पिछड़ा, असभ्य, जंगली, मूर्ख, गंवार, समझकर जानबूझकर मुख्यधारा से आदिवासियों को दूर रखनेवालों को वह आड़े हाथों लेती हैं और उपभोक्तावादी संस्कृति के ऑक्टोपस की खूनी भुजाओं से आदिवासियों को पूर्णतः मुक्त करने-कराने का संकल्प भरा आवाहन भी करती है।'[1]

आदिवासी समाज के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के अतिरिक्त उनकी कविता आदिवासी महिला के एकांतवास को भी टटोलती है, 'सुगिया', अपने घर की तलाश जैसी कविताओं में आदिवासी महिला के इस एकांत की मार्मिक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। डॉ. सतीश पांडेय के शब्दों में' 'निर्मला पुतुल के लिए कविता करना कोई शगल नहीं बल्कि एक जरूरत है। यह उनके एकांत का प्रवेश द्वार है, जहाँ पहुँच वे जिंदगी की भाग-दौड़ से थक हार कर सुस्ताती हैं।'[2]

निर्मला पुतुल आदिम प्रतिरोध की सक्षम साहित्यकार हैं। आदिवासियों में परम्परागत चली आ रही कुप्रथाओं पर वे तीव्र प्रहार करती हैं और वे समाज के सभ्य स्वार्थी लोगों से भोले-भाली जनता को सदैव सजग करती रहती हैं। एक किलो सेव और सेरभर गुड़ के मोह में अपनी जान पर खेलने वाली निरीह जनता को अपनी कविताओं के माध्यम से फटकारती हुई लालच में न आने की प्रेरणा देती हैं। कई बार सभ्यता का मुखौटा पहन कर समाज में कुछ भेड़िये बड़ी शान से घूमते रहते हैं, इनको वे अपनी कविताओं

के माध्यम से बे-नकाब करती हैं। निर्मला पुतुल की रचनाएँ आज के समय में आदिम सभ्यता, शोषण तथा समस्याओं को दशार्ने वाली जीती जागती तस्वीर हैं। अपनी बात को स्पष्ट कहने वाली रचनाकार के रूप में पुतुल जी समकालीन साहित्यकारों में अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं, इनकी आदिवासी संथाली भाषा में लिखी गई कविताओं का अनुवाद अशोक सिंह ने बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है।

'नगाड़े की तरह बजते शब्द' कविता की प्रथम रचना ही इस तथ्य को उजागर कर देती है कि 'स्त्री मात्र एक देह नहीं है' बल्कि उसके पास एक मन भी है। जिसमें अनेक-अनेक भाव समाहित हैं। वह भी संवेदनाओं के तंतुओं से सदैव जुड़ने का प्रयास करती है किन्तु आज तक नहीं जुड़ पाई क्योंकि समाज के ठेकेदार उसे आज भी नेत्रों का विषय मानकर सिर्फ उसका पान करना चाहते हैं, उसके हृदय में स्थान पाना नहीं। जब तक मनुष्य की भोगवादी दृष्टि रहेगी तब तक स्त्री मात्र एक उपभोग की वस्तु बनकर ही रह जाएगी, वह कभी भी भावना का विषय न बन पाएगी और उसके दुःख का निवारण भी न हो सकेगा। स्त्री समानता की बातें केवल पुस्तकों तक सिमट कर रह जाएँगी। हर बार उनकी अस्मिता को कटघरे में खड़ा किया जाएगा। इस दर्द को उनकी रचना 'क्या तुम जानते हो' कविता में अनुभव किया जा सकता है -

तन के भूगोल से परे, एक स्त्री के, / मन की गाँठें खोल कर, कभी पढ़ा है तुमने, /
अगर नहीं! तो फिर जानते क्या हो तुम,/ रसोई और बिस्तर के गणित से परे, /
एक स्त्री के बारे में।'[3]

एक बड़े समुदाय का न जानना ही उसके दर्द का मुख्य कारण है जिसका दंश वह अनादिकाल से सह रही है और वह दर्द है - असमानता का, परतंत्रता का और मात्र वस्तु बने रहने का। वह जन्म तो एक मनुष्य के घर में एक मनुष्य की तरह लेती है पर उसके साथ व्यवहार वस्तु की भाँति होता है। पहले उसके सारे निर्णयों की बागडोर पिता के हाथों में होती है फिर पति के हाथों में स्थानांतरित कर दी जाती है। जीवन भर घर-परिवार के प्रति समर्पित होने के बावजूद भी उसका कोई स्वामित्व नहीं होता यही उपेक्षा उसके आक्रोश का कारण बनती है. पुतुल जी 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री' में कहती हैं -

'यह कैसी विडम्बना है कि हम सहज अभ्यस्त हैं,/
एक मानक पुरुष- दृष्टि से देखने स्वयं की दुनियां,
मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते,
मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से।'[4]

Certified as TRUE COPY
Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086

आधुनिक युग में आदिवासी साहित्य की सर्जना करने वाली निर्मला पुतुल पूर्णतः विरह वेदना और विद्रोह की कवयित्री हैं। स्वतंत्र भारत के आदिवासियों के दुःख दर्दों का सूक्ष्म चित्रण पुतुल जी ने अपनी रचनाओं में बड़ी बारीकी से किया है। यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़ी ये कविताएँ स्वतंत्र भारत के विकास को झूठा ठहराती हुई

आदिवासियों के भयावह सत्य को उजागर करती हैं। निरीह व निरपराध आदिम जनों के शोषण, उत्पीडन तथा विद्रोह की आग को और अधिक बढ़ावा देने का काम उनकी रचनाओं ने बखूबी किया है। नारी को अबला, दासी, भोग्या समझने वाली मनुवादी प्रवृत्ति आज भी समाज में व्याप्त है। आदिम जनों की घनीभूत पीड़ा को कवयित्री ने अपने वाणी से अभिव्यक्त किया है तथा उपेक्षित आदिवासियों की स्त्रियों को सवर्णों द्वारा शोषित किए जाने का दर्द भी अपनी कविताओं में बड़ी सच्चाई से प्रस्तुत किया है। उच्चवर्गीय स्त्रियाँ भी शोषण से अछूती नहीं रही हैं, इसका उल्लेख भी वे धड़हल्ले से अपनी रचनाओं में करती हुई कामपिपासु सवर्ण समाज से सीधे प्रश्न करती हुए पूछती हैं -

पढ़ा है कभी, उसकी चुप्पी की देहलीज पर बैठ, / शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चहरे को?/उसके अन्दर वंशबीज बोते, क्या तुमने कभी महसूसा है,/ उसकी फैलती जड़ों को अपने भीतर?'[5]

यथार्थ के धरातल पर वेदनाओं के भयावह और अंतर्मुख कराने वाले शब्दचित्रों की अनेकानेक फितियाँ निर्मला पुतुल ने अपनी रचनाओं प्रदर्शित की हैं। आदिवासियों का खुलेआम होने वाला शोषण और उस शोषण से उनके जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव व वेदनाओं के जख्म इनकी रचनाओं में जगह-जगह दर्शनीय हैं।

सम्पूर्ण आदिवासी समाज को वे सजग करती हुई उन्हें अपने अस्तित्व व अस्मिता का स्मरण कराती हैं। बाहरी लोगों के घर में घुसने के कारण जो दैहिक शोषण हो रहा है, उसका बखान करती हुई पुरुषों को ललकारती हैं। साथ ही, उन सामाजिक कुरीतियों की तरफ भी हमारा ध्यान अग्रसर करती हैं जो स्त्री शोषण के प्रमुख कारक हैं। जैसे - स्त्रियों द्वारा हल चलाने पर रोक, पिता की संपत्ति से वंचित रहना, समाज में बहुपत्नी विवाह की कुप्रथा, अंधविश्वास, मद्यपान आदि बुराइयों को अपनी रचनाओं के माध्यम से दर्शाती हैं। आदिम संस्कृति के प्रतिनिधि को अपने समुदाय में हो रही दुर्दशा को लेकर प्रश्न करते हुए 'चुड़का सोरेन से' वह पूछती है -

कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान, जो सिर्फ,
एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है, पूरे गाँव को गिरवी?
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गटठर की तरह,
लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को,
हजार- पाँच सौ हथेलियों पर रखकर
पिछ्ले साल, धनकटनी में खाली पेट बंगाल गयी
पड़ोस की बुधनी, किसका पेट सजाकर लौटी है गाँव?'[6]

आदिम समुदायों में शोषण की अधिकांशतः बलि भी स्त्री को ही देनी पड़ती है। जिस स्त्री को प्राचीन संस्कृति में सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता था उसी स्त्री जाति को हैवान सबल पुरुषों द्वारा नोंच-नोंच कर खाने का और उसको उसके अधिकारों से वंचित करने

का मानो बीड़ा उठाया लिया गया हो। आदिम स्त्री की वेदनाओं की कोई सीमा नहीं है। इतिहास गवाह है कि सवर्ण जातियों ने सदैव अपनी मनमानी का बिगुल बजाया है। आदिवासी स्त्रियों को घने जख्म देकर उन पर नमक छिड़कने का कार्य भी सवर्णों ने सदैव ही किया है। इस मानसिक आग में स्त्री का शरीर ही नहीं बल्कि मन भी जलकर राख हो जाता है। इस भयावह अग्नि में जली हुई स्त्री को मलहम लगाकर पुनः जीवित करना बड़ा ही असहनीय कार्य है। इस उत्पीड़न और दर्द को कवयित्री ने बड़ी वेदना के साथ अपनी कविता 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू!' में व्यक्त किया है -

'जब तुमने चलाया था हल, तब डोल उठा था,/ बस्ती की माँझी-थान में बैठे देवता का सिंहासन,/ गिर गयी थी पुश्तैनी प्रधान कुर्सी पर बैठे, / मगजहीन 'माँझी हाड़ाम' की पगड़ी,/पता है बस्ती की नाक बचाने खातिर / तब बैल बनाकर हल में जोता था, जालिमों ने तुम्हें,/ खूंटे में बाधकर खिलाया था भूसा। / हक की बात मत न करो मेरी बहिन,/ मत माँगो पिता की संपत्ति पर अधिकार।'[7]

अथाह वेदना के साथ असीम विद्रोह की भावाभिव्यक्ति निर्मला जी की पुस्तक 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' की रचनाओं में देखी जा सकती है। उनकी कविताओं में विद्रोह की आग ऐसी सुलगती है कि असहाय और कमजोरों में भी नवचेतना का संचार कर देती है। उनकी कविताओं में विषमतामयी स्थितियों को बदलने की अद्भुत क्षमता, परिवर्तन की चाह और शोषितों के प्रति नवक्रांति का संचार करने की अदम्य लालसा को देखा जा सकता है। परिणामतः ये कविताएँ शोषितों के संघर्ष का दस्तावेज हैं और पाखंडी सभ्य समाज का पदार्फाश भी करती हैं। 'मैं वो नहीं हूँ, जो तुम समझते हैं' कविता में कवयित्री कहती हैं -

'मैं चुप हूँ तो मत समझो की गूंगी हूँ या कि / रखा है मैने आजीवन मौन- व्रत,/
गहराती चुप्पी के अँधेरे में सुलग रही है, भीतर / जो आक्रोश की आग, उसकी रोशनी में
पढ़ रही हूँ,/तुम्हारे खिलाफ अकेले लड़ने के खतरों का लेख, / पर याद रखो ...../
तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुजरती / मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर
नसें,/ ताकि ठीक समय पर, ठीक तरह से कर सकूँ हमला,/
और बता सकूँ सरे आम गिरेबान पकड़, / कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो!!'[8]

आदिवासी जनों के शोषण, विस्थापन, रोजगार हेतु पलायन और संघर्ष को वाणी प्रदान करने वाली एक सशक्त रचनाकार के रूप में निर्मला पुतुल जानी जाती हैं। 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' काव्य- संग्रह में आदिवासी समाज के ऐसे मार्मिक शब्द-चित्रों की अभिव्यक्ति हुई है कि पढ़कर रौंगटे खड़े हो जाते हैं। भूमंडलीकरण के कारण बाजार बनते देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। जनता हस्तकला की तुलना में मशीन से निर्मित वस्तुओं को श्रेयस्कर समझने लगी, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी गृहउद्योगों का सतत क्षरण होता चला गया। इस समस्या को रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' में भी चित्रित किया गया है जिसमें असुर

Certified as TRUE COPY
Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

आदिवासी जनजाति का लोहा पिघलाकर यंत्र बनाने की हस्तकला के क्षरण का वर्णन किया गया है। 'शिंडाल्को' और 'वेदांग' जैसी विश्वविख्यात कम्पनियों ने न केवल असुरों की हस्त कला का विनाश किया बल्कि उनकी अजेय जिजीविषा को भी समाप्त कर दिया। 'जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हजार- हजार इंद्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था।'[9] निर्मला पुतुल की कविता 'ढेपचा के बाबू' में भी कवयित्री इस प्रकार की समस्याओं की ओर ध्यान खींचती हैं इस कविता में बेरोजगारी, भुखमरी और गरीबी से त्रस्त ढेपचा के पिता कश्मीर, बहन 'सुगिया' बंगाल और ढेपचा असम को पलायन कर जाता है किंतु ढेपचा की माँ नहीं छोड़ पाती और अपनी पीड़ा बयान करती हुई ढेपचा के बाबू से कहती है कि -

'दोना-पत्तल भी नहीं बिकता / और न ही लेता है कोई चर - चटाई /
झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाजार नहीं रहा अब, /
भूले भटके गर कभी कोई पैकार आता भी है /
तो रुपए जोड़ा माँगता है पंखा / और सौ रुपए दर्जन चटाई /
एक तो सब छोड़- छाड़ दिन - भर लगे रहो /
उस पर भी गर पचास - साठ नहीं निकले / तो उसे करने से क्या फायदा?'[10]

आज भी समुचित शिक्षा के अभाव में आदिवासी जनता तमाम तरह के अंधविश्वासों से घिरी हुई है जिसका उल्लेख महुआ माजी द्वारा लिखा हुआ उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में सगेन की ताई नामक पात्र के माध्यम से देखा जा सकता है। मरंग गोड़ा में युरेनियम खनन के बाद निकलने वाले अवशिष्ट का निष्कासन नदियों में करने से स्केलिटन डिफॉरमिटिस, आबूर्द, माईक्रो कैथेली, मेगा कैथेली, थैलेसिमिया, डाउन सिंड्रम, बाँझपन जैसी बीमारियों की चपेट में मरंग गोड़ा क्षेत्र के निवासी आ जाते हैं और इन बीमारियों को वे डाइन का प्रकोप मानते हैं। बलि का बकरा बनती है सगेन की ताई जो कि उपन्यास में पूरे मरंग गोड़ा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है।

आदिवासी संस्कृति में प्रकृति संवर्धन की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। पर, दुखद यह है कि जिस प्रकृति और पर्यावरण को बचाने के लिए आदिवासी समाज तत्पर है, आज वह स्वयं अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा हेतु जूझ रहा है। वैदिक काल से आदिवासियों को जो खदेड़ने का उपक्रम शुरू हुआ वह आज भी देखा जा सकता है। परन्तु, इस खदेड़पन के विरुद्ध सदैव आवाज उठी और आज भी निर्मला पुतुल जैसी कवयित्री के माध्यम से सामाजिक और साहित्यक धरातल पर आदिवासियों के स्थापन के लिए बिगुल बजाया जा रहा है। निर्मला पुतुल ने अपने अनुभवों को जिनमें स्वानुभूति के दर्द की गंध है अपने इस काव्य- संग्रह में संजोकर प्रस्तुत किया है जो यथार्थ की भूमि पर जन्मे हैं इसलिए इनमें सच्चाई व कर्मठता दृश्यमान है। स्त्री के प्रति गहरी संवेदना उनकी रचनाओं में झलकती है। इस प्रकार निष्कर्षतः कह सकते हैं कि अंग्रेजों के आगमन के उपरान्त विकास की अंधी आधुनिकता के परिणामस्वरूप, सदियों से अपने

जंगल, जमीन और नदी में सुखी जीवन व्यतीत कर रहा मुख्य धारा से कटा आदिवासी समाज पहली बार प्रभावित हुआ। विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण एवं विस्थापन के कारण ही आदिवासी अस्मिता का प्रश्न तथा आदिवासी आइडेंटिटी क्राइसिस जैसे ज्वलंत मुद्दे मुख्य धारा के गले की फाँस बन कर रह गए जिसका प्रतिकार आदिवासी जननायक, बुद्धिजीवियों ने बहुत ही तीखे तेवर में किया। अपनी कविताओं में निर्मला पुतुल ने आदिवासियों के इसी संघर्षगाथा के माध्यम से सत्ताधारियों के नाक में नकेल कसने की कोशिश की है। आधुनिकता, आदिवासी स्त्री शोषण, अधिग्रहण, डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया, पर्यावरण दोहन, रेडियोधर्मी पदार्थों के उत्सर्जन से होने वाली गंभीर बीमारियाँ और इन सभी से बचने हेतु होने वाला विस्थापन आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचारों का जीता-जागता दस्तावेज है जो इस अंधाधुंध विकास को कठघरे में खड़ा करता है। इन अत्याचारों के खिलाफ निर्मला पुतुल के शब्द नगाड़े की तरह बजते हैं क्योकि ये शब्द ही हैं जो गूंजते हैं तो बड़े परिवर्तन का कारण बनते हैं।

सन्दर्भ :

1. मीणा डॉ. रमेश चंद, आदिवासी समाजः दशा और दिशा, गुप्ता आफसेट प्रिंटर्स, बूंदी (राजस्थान),210, पृ.123
2. पाण्डेय डॉ. सतीश, समकालीन कविता सृजन सन्दर्भ, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ.160
3. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 8
4. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 9
5. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 8
6. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 20-21
7. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 23-24
8. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 56
9. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013, पृ. 100
10. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 44-45

Certified as
TRUE COPY

Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.

हिन्दी विभागाध्यक्ष
रामनिरंजन झुनझुनवाला कॉलेज, घाटकोपर (प), मुंबई - ४०००८६

इक्कीसवीं सदी के आदिवासी साहित्य में विमर्श और चुनौतियाँ

डॉ. नवनाथ गाड़ेकर

वृक्ष से जल है, जल से अन्न है एवं अन्न ही जीवन है। मानव का अस्तित्व वनस्पति और जीव-जंतु के अस्तित्व पर निर्भर है। वन और आदिवासी एक दूसरे के पूरक हैं। वन, आदिवासियों के लिए दाता, अधिरक्षक है, जहाँ से उन्हें खाद्य पदार्थ, रोजगार, आर्थिक समृद्धि एवं उनकी संस्कृति के विकास को बल मिला। वनों से जहाँ उन्हें फल, फूल, ईंधन, चारा, घर बनाने की लकड़ी, जीवनदायिनी जड़ी - बूटी आदि मिलती है, वहीं उनके गहरे मनोभावों का पूर्ण संतोष मिलता है। विकास की बहुत- सी योजनाओं ने पहाड़ों का अहित किया। गरीबी, शोषण, बेकारी एवं विपन्नता के फलस्वरूप उत्तराखंड की माँग उठी। आदिवासियों की आकांक्षाओं के अनुरूप उनका विकास करने से ही अनेक आंदोलन शांत हो सकते हैं।

वन केवल वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों, वन्य-जीवों एवं वनस्पतियों के आश्रय स्थल ही नहीं अपितु बाढ़ एवं सूखे की विभीषिका से बचने के सबसे अच्छे साधन है। संजीव, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, प्रतिभा राय, तेजिन्दर, रणेंद्र, हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा, महादेव टोप्पो आदि आदिवासी लेखक हैं। इन सभी आदिवासी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में समस्त आदिवासी समाज की पीड़ा, वेदना एवं उनकी संस्कृति का विस्तार से चित्रण किया है।

भारत सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के कारण समस्त आदिवासी समाज की शोषण प्रक्रिया शुरू हुई। इस प्रक्रिया के विरोध में आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक उर्जा को आदिवासी साहित्य कहा जाता है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में भारत में नए सामाजिक आंदोलनों का प्रारंभ हुआ। किसानों, महिलाओं दलितों और आदिवासियों पर हो रहे अन्याय - अत्याचार के विरोध में बड़े - बड़े आंदोलन होने लगे। अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी खास अस्मिता को कारण बनाया और उस शोषण तथा भेदभाव से संघर्ष के लिए उस संबंधित अस्मिता, पहचान को धारण करनेवाले समूह, समुदाय को अपने साथ लेकर अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक अभियान चलाया। आदिवासी लोक में साहित्य के साथ-साथ विविध कला माध्यमों का विकास बहुत पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को जारी रखा। जनभाषा में और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की ही तरह उपेक्षा का शिकार हुआ। आज भी सैकडों देशज भाषाओं में आदिवासी साहित्य लिखा जा रहा है, जिसमें आदिवासियों का संवाद शेष है। इसके संदर्भ में डॉ. अभिषेक कुमार यादव ने लिखा है,.

Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

कुछ महत्वपूर्ण विशेषांक

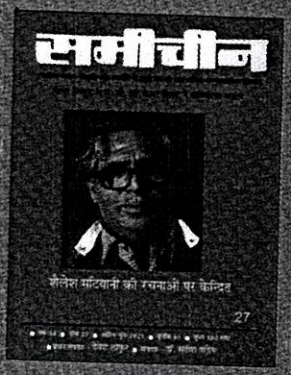

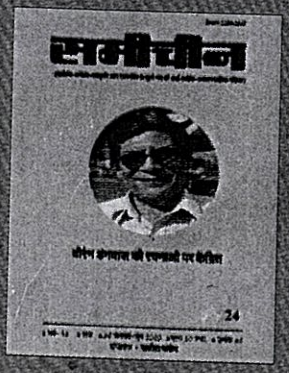

Certified as
TRUE COPY

Principal
Ramniranjan Jhunjhunwala College,
Ghatkopar (W), Mumbai-400086.